भक्ति काल

भक्ति आंदोलन का प्रारंभ

भक्ति का उल्लेख प्राचीन संस्कृत काव्य 'महाभारत' में मिलता है । वहाँ वह 'सात्वत धर्म' या 'भागवत धर्म' के रूप में एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में भी उल्लिखित है । श्रीमद्भगवत्गीता, जो महाभारत का ही एक अंश है, में भक्ति एक जीवन दर्शन, विचारधारा या भावधारा के रूप में वर्णित है । 'महाभारत' की रचना उत्तर भारत में ही हुई थी । स्पष्टतः प्राचीनकाल में भक्ति आंदोलन उत्तर भारत में प्रादुर्भूत हुआ था । कालांतर में उसका विलोप हो गया । आगे चलकर दक्षिण भारत में, जहाँ राजनीतिक-सामाजिक स्थिरता और सुव्यवस्था थी, भक्ति एक प्रबल भावधारा के रूप में पुनः प्रकट हुई । धीरे-धीरे प्रथम सहस्राब्दि में वह एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में संपूर्ण दक्षिण भारत में फैल गई । 13वीं-14शती में भक्ति का यह आंदोलन उत्तर भारत में भी फैल गया । भक्ति के दक्षिण भारतीय आचार्यों ने इस भावधारा के प्रचारार्थ उत्तर भारत की यात्राएँ कीं और फिर नए शिष्य और अनुयायी बनाए । लंबे समय तक राजनीतिक बिखराव, सामंती उत्पीड़न और भेदभाव के बाद उत्तर भारत में सामान्य लोक परिवेश में अनेक तरह के बदलाव आने लगे । धीरे-धीरे जड़ें जमाती मजबूत केंद्रीय सत्ता ने कृषि, व्यापार और उद्योग के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । पूँजीवादी संबंधों का प्रसार हुआ । नए-नए बाजारों और मंडियों का विकास होने लगा । सामंती व्यवस्था में जो वर्ण और जातियाँ पिछड़ी हुई थीं उनमें अभूतपूर्व आर्थिक सुधार हुए ।

उपर्युक्त बातें उस सामाजिक-ऐतिहासिक स्थिति को स्पष्ट करती हैं जिसमें तथाकथित नीची कही जानेवाली जातियों को सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से ऊपर उठने के लिए एक नया मार्ग ढूँढ़ने की ओर प्रवृत्त किया । लेकिन यह काम किसी सुसंगत विचारधारा के बिना संभव नहीं था । रामानुजाचार्य ने उस कमी को पूरा किया । शंकराचार्य की तरह रामानुजाचार्य ने जगत को मिथ्या नहीं कहा, उन्होंने उसे वास्तविक माना । उनके इस मत को विशिष्टाद्वैत के रूप में जाना जाता है । रामानुजाचार्य के अनुसार इस

जगत को वास्तविक मानकर उसे महत्त्व देने में ही भक्ति की लोकोन्मुखता एवं करुणा है । जगत मिथ्या नहीं, वास्तविक है, यह लौकिकता की विश्वबोधात्मक या दार्शनिक स्वीकृति है । रामानुजाचार्य से पहले भी भक्ति एक प्रवृत्ति के रूप में थी, लेकिन वह साधनापद्धति मात्र थी, ऐतिहासिक आंदोलन के रूप में तो वह अब विकसित हुई । ऐतिहासिक स्थितियों की अनुकूलता में यह प्रवृत्ति व्यापक एवं तीव्र होकर धार्मिक-सामाजिक तथा सांस्कृतिक आंदोलन बन गई । रामानुजाचार्य ने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र) के आधार पर दर्शन के स्तर पर भक्ति को प्रतिष्ठित किया । उन्होंने इस आंदोलन को वैचारिक आधार प्रदान किया । इसके बिना भक्ति आंदोलन का रूप नहीं ले सकती थी ।

आगे चलकर रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में रामानंद (1300 ई० के आसपास) हुए । इनके विषय में कहा जाता है 'भक्ति द्रविड़ ऊपजी, लाए रामानंद' । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निष्कर्ष में भी यही स्वर है - "भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलाने के लिए पूरा स्थान मिला ।" यहाँ शुक्ल जी ने भक्ति का स्रोत दक्षिण भारत में माना है, किंतु उसके विकास और प्रसार के लिए अनुकूल परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया है । अनुकूल परिस्थितियों से उनका तात्पर्य तत्कालीन सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से है । उनके अनुसार - "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया । .....अपने गौरव पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त मार्ग ही क्या था ।"

परंतु हजारी प्रसाद द्विवेदी इस मत को आंशिक रूप में ही स्वीकार करते हैं । उनका जोर सिद्धों-नाथों की परंपरा पर अधिक है । नाथपंथियों, सिद्धों की बानी में हृदय के प्रकृत भावों - प्रेम, भक्ति आदि का अभाव था । अशिक्षित जनता उनके प्रभाव में थी । दूसरी ओर विद्वान ब्रह्मसूत्र, उपनिषदों, गीता आदि पर भाष्य लिखकर भक्तिमार्ग के सिद्धांत पक्ष को विकसित करते रहे । कालांतर में ये शास्त्रकार लगातार लोक की ओर झुकते चले गए । भक्त कवियों ने भी लोकभाषा का चुनाव किया । द्विवेदी जी शास्त्र के स्थान पर विचारसंपन्न जन का लोक की ओर झुकाव दिखाते हुए इसे भारतीय चिंताधारा का स्वाभाविक विकास मानते हैं । उन्होंने भक्ति आंदोलन को इसी स्वाभाविक विकास के रूप में समझने का प्रस्ताव किया है ।

इस तरह 13वीं-14वीं शताब्दी तक आते-आते उत्तर भारत में अनुकूल परिस्थितियाँ उपस्थित हुईं और भक्ति का आंदोलनकारी स्वरूप सामने आया । इसके कारणों की पड़ताल करते हुए शुक्ल जी ने तात्कालिक परिस्थितियों और दक्षिण की भक्ति परंपरा को महत्त्वपूर्ण माना है; जबकि द्विवेदी जी ने तात्कालिक परिस्थिति और सिद्धों-नाथों की तंत्र-योग-निष्ठ साधना और विचारधारा को, जिसमें पाखंड और सामाजिक विभेद का प्रबल विरोध था ।

भक्ति के संप्रदाय

भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ देखने को मिलती हैं - निर्गुण धारा और सगुण धारा । निर्गुण का शाब्दिक अर्थ गुणरहित है । लेकिन संत साहित्य में निर्गुण गुणातीत की ओर संकेत करता है । निर्गुण

यहाँ किसी निषेधात्मक सत्ता का वाचक न होकर उस परब्रह्म के लिए है जो सत्त्व, रजस और तमस तीनों गुणों से परे है, जबकि सगुण मतवादियों के इष्ट भगवान श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं । वे अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं और अपनी लीला से भक्तों के चित्त का रंजन करते हैं । अत: सगुण मतवाद में विष्णु के 24 अवतारों में से अनेक की उपासना होती है जिनमें राम और कृष्ण सर्वाधिक लोकप्रिय और लोकाराधित हैं ।

भक्ति के अनेक आचार्य हुए हैं जिनके द्वारा विभिन्न भक्ति संप्रदायों का प्रवर्तन हुआ । उनमें से चार प्रमुख संप्रदायों और उनके आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

श्री संप्रदाय

श्री संप्रदाय के संस्थापक आचार्य रामानुज हैं । इन्होंने अवतारी विष्णु को अपनी भक्ति में उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की । विशिष्टाद्वैतवाद शंकर के अद्वैतवाद का परिष्कार है । इसके अनुसार पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष हैं । भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वे पाँच रूप धारण करते हैं । इन्हीं में अर्चावतार राम की गणना होती है । इनकी भक्ति से ही मुक्ति संभव है ।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए । इनके गुरु राघवानंद थे । रामानंद को आकाशधर्मा गुरु माना जाता है । इन्होंने अवर्ण-सवर्ण, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक, सभी को शिष्य बनाया; क्योंकि ये श्रेष्ठता का आधार भक्ति को मानते थे, जाति को नहीं । इनकी शिष्य परंपरा में रैदास, कबीर, धन्ना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, पद्मावती आदि के नाम प्रसिद्ध हैं । इसी परंपरा में गोस्वामी तुलसीदास भी हुए ।

ब्रह्म संप्रदाय

इस संप्रदाय का प्रवर्तन मध्वाचार्य के द्वारा हुआ । इनका जन्म दक्षिण भारत के बेलिग्राम नामक स्थान में हुआ था । वेदांत में पारंगत होने पर भी संन्यास लेने पर इनका नाम आनंदतीर्थ रखा गया । इन्होंने अद्वैतवाद का घोर विरोध किया तथा द्वैतवाद का प्रतिपादन किया । द्वैतवाद के अनुसार भगवान विष्णु आठ गुणों से युक्त सर्वोच्च तत्त्व हैं । जगत सत्य है; ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है । समस्त जीव हरि के अनुचर हैं । ऐसी मान्यता है कि महाप्रभु चैतन्य इसी संप्रदाय में दीक्षित हुए थे किंतु आगे उनका स्वतंत्र मत और संप्रदाय विकसित हो गया ।

रुद्र संप्रदाय

विष्णुस्वामी के द्वारा प्रवर्तित यह संप्रदाय महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि संप्रदाय के रूप में ही हिंदी में प्रसिद्ध हुआ । वल्लभाचार्य का जोर कृष्ण की उपासना पर था, जिसके लिए उन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति ग्रहण की । सूरदास एवं अष्टछाप के कवि इसी संप्रदाय से संबद्ध हैं । इस संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत शुद्धाद्वैतवाद है ।

सनकादिक संप्रदाय

यह संप्रदाय निम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित है । कुछ विद्वान इस संप्रदाय को वैष्णव भक्ति का

प्राचीनतम संप्रदाय मानते हैं और निंबार्क को उसका पुनरुद्धारक मानते हैं । इस संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत 'भेदाभेदवाद' या 'द्वैताद्वैतवाद' है । राधा-कृष्ण की युगलोपासना का विधान इस संप्रदाय में है । इसके अंतर्गत श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं के द्वारा भक्ति भाव की अभिव्यक्ति की जाती है । स्वामी हरिदास का सखी संप्रदाय इसी की एक शाखा है ।

सूफी साधक

इन परंपरागत प्रमुख भारतीय भक्ति संप्रदायों के अतिरिक्त इस्लाम के साथ भारत में सूफी मत का भी आगमन हुआ था । सूफी मत या 'तसव्वुफ' से संबंधित अनेक सूफी संप्रदाय भारत में आए और उन्होंने अपनी खानकाहें (मठ) देश के अनेक क्षेत्रों में स्थापित कीं । भारत में उनकी अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ फैल चलीं । सूफी मत मूलतः प्रेममार्गी था । मानव हृदय में निहित प्रेम के द्वारा यह अल्लाह (परमात्मा) को प्राप्त करने का निर्देश करता था । अनेक सूफी संतों ने अपार लोकप्रियता अर्जित की । भक्ति मूलतः प्रेम ही है, वह प्रेम का दिव्य स्वरूप है । सूफी मत में 'इश्क हकीकी' भी ईश्वरीय या दिव्य प्रेम है । स्वभावतः सूफी मत भक्ति आंदोलन का प्रमुख अंग है ।

भक्ति आंदोलन की व्यापकता अखिल भारतीय थी । इसमें निहित मानवीय दृष्टिकोण ने हिंदुओं के अतिरिक्त मुसलमानों को भी आकर्षित किया । भावुक मुसलमानों द्वारा प्रवर्तित 'प्रेम की पीर' की यह भावधारा अपनी विकास प्रक्रिया के दौरान हर उदार मानवीय हृदय को अपने में समेटती चली गई । उसने यह सिद्ध कर दिया कि 'एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है ।' हालाँकि सूफी इस्लाम मतानुयायी हैं और इस्लाम एकेश्वरवादी है; फिर भी सूफी संतों ने 'अनलहक' अर्थात 'मैं ब्रह्म हूँ' की घोषणा की । यह बात अद्वैतवाद के करीब है । सूफी साधना के अनुसार मनुष्य के चार विभाग हैं - 1. नफ्स (इंद्रिय), 2. अक्ल (बुद्धि या माया), 3. कल्ब (हृदय), 4. रूह (आत्मा) । यह साधना नफ्स और अक्ल को दबाकर कल्ब की साधना से रूह की प्राप्ति पर बल देती है । हृदयरूपी दर्पण में परमसत्ता का प्रतिबिंब आभासित होता है । यह दर्पण जितना ही निर्मल होगा, रूप उतना ही स्पष्ट होगा । तात्पर्य यह कि सूफी साधना भी हृदय की साधना है । इसलिए वह भक्ति ही है ।

प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से होती हुई प्रेमाख्यानक काव्यों की एक परंपरा पहले से चली आ रही थी । हिंदी के सूफी कवियों ने इसी परंपरा में अपनी भावधारा मिला दी और सूफी अभिप्रायों को उभारते हुए नए ढंग के प्रेमाख्यानक काव्य लिखे । इन काव्यों में प्रेमकथाएँ प्रायः लोकप्रचलित और परंपरागत ही होती थीं किंतु उनमें सूफी संदेशों और अभिप्रायों के पुट होते थे ।

मुल्ला दाउद को हिंदी का प्रथम सूफी कवि माना जाता है । 'चंदायन' (1379) इनकी प्रसिद्ध रचना है । इसी से सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा का आरंभ हुआ । सूफी कवियों की यह परंपरा 19वीं शती तक मिलती है । भारत में सूफी मत के चार प्रमुख संप्रदाय हैं - 1. चिश्ती, 2. सोहरावर्दी, 3. कादरी और 4. नक्शबंदी । सूफी मुसलमान थे, लेकिन उन्होंने हिंदू घरों में प्रचलित कथा-रूढ़ियों को अपने काव्य का आधार बनाया । हिंदी का सूफी काव्य अवधी भाषा में है । उसकी भाषा और वर्णना में भारतीय संस्कृति रची-बसी है । 'प्रेम की पीर' की व्यंजना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है ।

उपर्युक्त भक्ति संप्रदायों के अतिरिक्त भी भक्ति के कई अन्य संप्रदाय हैं, किंतु भक्ति का लक्षण भगवद्विषयक रति, अनन्यता, पूर्ण समर्पण सब में मिलता है । सदाचार, परदुखकातरता, प्राणिमात्र पर करुणा, समभाव, अनावश्यक लौकिक संपत्ति के प्रति उपेक्षा, अहिंसा आदि का भाव सभी प्रकार के संप्रदायों के भक्तों में पाया जाता है ।

भाषा, काव्य रूप और छंद

भक्तिकालीन हिंदी साहित्य मुख्य रूप से ब्रजभाषा और अवधी में रचा गया । 14वीं शती में दिल्ली में केंद्रीय सत्ता स्थापित होने से सड़कें आदि बड़े पैमाने पर बनीं, व्यापार में बढ़ोत्तरी हुई तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों के सूत्र एक दूसरे से जुड़ने लगे । सैनिकों, व्यापारियों और साधु-संतों के माध्यम से भाषाएँ भी प्रसार पाने लगीं । परिणामतः पूरे देश में मध्यदेश की प्रधान काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रचार-प्रसार हुआ । नामदेव ने मराठी, नरसी मेहता ने गुजराती और नानकदेव ने पंजाबी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी रचनाएँ कीं । कृष्णलीला और कृष्णकथा का केंद्र ब्रज था । ब्रजभाषा वहीं की बोली थी । इस कारण वह कृष्ण भक्ति की काव्यभाषा बन गई । अवधी के साथ भी वही हुआ । राम की जन्मभूमि अयोध्या के कारण वहाँ की भाषा अवधी रामभक्तों के लिए महत्त्वपूर्ण हो गई । लेकिन ब्रजभाषा का प्रभाव उसके माधुर्य, कोमलता और संगीत के कारण व्यापक रहा । बंगाल, असम आदि में ब्रजभाषा प्रभावित बंगला-असमिया को 'ब्रजबुलि' कहा गया । सुदूर दक्षिण भारत तक ब्रजभाषा का प्रसार हुआ ।

भक्तिकालीन साहित्य में खड़ी बोली की कोई सुदृढ़ परंपरा नहीं मिलती । खड़ी बोली का मिश्रित रूप सधुक्कड़ी अवश्य प्रचलन में था, जो वस्तुतः पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, ब्रज और कहीं-कहीं अवधी का भी पंचमेल है ।

भक्तिकाल में अनेक साहित्यिक विधाओं और छंदों का प्रचलन था, किंतु गेयपद और दोहा-चौपाई में कड़वकबद्ध रचना-रूपों की प्रधानता थी । हिंदी में गेयपदों की परंपरा का आरंभ सिद्धों के द्वारा हुआ । आगे नाथपंथी योगियों तथा नामदेव, नानक, कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई आदि ने गेयपदों का विकास किया । गेयपदों में काव्य और संगीत एक दूसरे में घुले-मिले होते हैं । दोहा-चौपाई की परंपरा भी सरहपा से मिलने लगती है । दोहा-चौपाई की प्रकृति प्रबंध काव्य के लिए उपयुक्त मानी जाती है और अवधी भाषा में इसके सबसे ज्यादा प्रयोग हुए ।

इसके अतिरिक्त छप्पय, सवैया, कवित्त, बरवै, हरिगीतिका आदि भक्ति काव्य के बहुप्रयुक्त छंद हैं । तुलसीदास के यहाँ मध्यकाल में प्रचलित प्रायः मंगलकाव्य, नहछू, कलेउ, सोहर जैसे लोककाव्य रूपों का भी उपयोग हुआ है । नहछू, कलेउ आदि विवाह के समय गाए जाने वाले और सोहर पुत्रजन्म के समय गाया जानेवाला गीत है ।

निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्य धारा

भक्ति काल में भक्ति की दो धाराएँ प्रवहमान थीं, निर्गुण धारा और सगुण धारा । इन दोनों की दो-दो शाखाएँ हैं । ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी निर्गुण काव्य की शाखाएँ हैं जबकि रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा सगुण काव्य की शाखाएँ हैं । ज्ञानमार्ग की प्रतिष्ठा आचार्य शंकर ने की थी । उन्होंने निर्गुण

ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन 'ज्ञान' को बताया था । ज्ञान वस्तुत: अंतर्ज्ञान है जो सहज ही बिना किसी भक्तिमार्गीय पद्धति या साधनों के सिर्फ सरलता और सत्यनिष्ठा के बल पर उत्पन्न होता है । इसे ही 'सहज ज्ञान' कहा गया तथा संत कबीर ने इसे 'ब्रह्मगियान' कहा है । इस धारा के प्रमुख कवियों में कबीर, रैदास, गुरुनानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब आदि का नाम आता है ।

कबीर (1399–1518)

बाल्यावस्था में ही कबीर के भीतर भक्ति की प्रवृत्ति पनप चुकी थी । प्रसिद्ध है कि रामानंद उनके गुरु थे। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे । आत्म-चिंतन एवं लोकनिरीक्षण से जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया, उसे ही निर्भयतापूर्वक अपनी साखियों और पदों में अभिव्यक्त किया । वर्णाश्रम धर्म में प्रचलित कुरीतियों और लोक में प्रचलित अपधर्म को कबीर ने निशाने पर लिया । वे ऐसे कर्मयोगी थे जो अंधविश्वासों की खाई पाटने के लिए अपना घर जलाने को सदा तैयार रहते थे । उनकी कथनी और करनी में जबरदस्त एकता थी ।

उनकी कविता में छंद, अलंकार, शब्द-शक्ति आदि गौण हैं और लोकमंगल की चिंता प्रधान है । इनकी वाणी का संग्रह 'बीजक' नाम से है । बीजक के तीन भाग हैं– सबद में गेयपद हैं, रमैनी चौपाई तथा साखी दोहा छंद में हैं । सिखों के 'गुरु ग्रंथ साहब' में भी कबीर के नाम से 'पद' तथा 'सलोकु' संकलित हैं । कबीर की अभिव्यंजना शैली बहुत सशक्त थी । उनकी भाषा अनेक बोलियों का मिश्रण है । इस मिश्रित भाषा को सधुक्कड़ी या पंचमेल कहा गया । कबीर के काव्य में प्रतीक योजना का भी सुंदर निर्वाह हुआ है ।

रैदास (1388–1518)

कबीर की भाँति रैदास का बल भी काव्य और कलापक्ष की अपेक्षा भक्ति पर अधिक रहा है । उनकी कविताओं में सामाजिक विषमता के प्रति मृदु विरोध है । उन्होंने वर्णवादी व्यवस्था की असमानता के प्रति असंतोष प्रकट किया है । रैदास के पद गुरुग्रंथ साहब में संकलित हैं और कुछ फुटकल पद '[illegible]' में । उनकी भक्ति का स्वरूप निर्गुण है, लेकिन कबीर जैसा [illegible] में नहीं है । वे अपनी कविता में अत्यंत विनम्र और निरीह हैं । उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थया[illegible] विधानों का विरोध कर आभ्यंतरिक साधना पर बल दिया है । अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह सरल व्यावहारिक ब्रजभाषा है जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और उर्दू फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है । उपमा तथा रूपक अलंकार रैदास [illegible]

संत रैदास रामानंद के बारह शिष्यों में एक हैं । अनन्यता, भगवत प्रेम, दैन्य, आत्मनिवेदन और सरलहृदयता इनकी रचनाओं की विशेषता है । एक उदाहरण देखें –

अब कैसे छूटे राम, नाम रट लागी ।
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समा[illegible]
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा[illegible]

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती ।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहि मिलत सुहागा
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा ।

गुरु नानकदेव (1469-1538)

नानकदेव को सिख पंथ के प्रवर्तक गुरु के रूप में जाना जाता है । इनका जन्म तलवाड़ी ग्राम, जिला लाहौर में हुआ था । इनका जन्म स्थान अब ननकाना साहब के नाम से प्रख्यात है और पाकिस्तान में पड़ता है । बाल्यावस्था में इन्हें संस्कृत, फारसी, पंजाबी एवं हिंदी की शिक्षा प्राप्त हुई । ये आरंभ से ही आत्मचिंतन, ईश्वर-भक्ति और संत सेवा की ओर उन्मुख रहे । इनका झुकाव ऐसी उपासना पद्धति की तरफ था, जो सांप्रदायिक न हो । कबीर दास द्वारा प्रवर्तित 'निर्गुण संतमत' इसी प्रवृत्ति का था । अत: कबीर की भाँति धार्मिक रूढ़िवाद, जाति के संकीर्ण बंधनों तथा अनाचारों के प्रति इन्होंने विरोध का स्वर उठाया । इनके काव्य में निर्गुण ब्रह्म के प्रति उच्च कोटि की भक्ति भावना विद्यमान है, साथ ही ये अन्य धार्मिक विचारधाराओं के लिए भी श्रद्धा भाव रखते थे ।

इनकी बानियों का संग्रह 'आदिग्रंथ' के महला नामक खंड में हुआ है । इनमें 'शब्द' और 'सलोकु' के साथ, 'जपुजी', 'आसादीवार', 'रहिरास' एवं 'सोहिला' का भी संग्रह है । इनकी रचनाओं का अधिकांश पंजाबी में है किंतु कहीं-कहीं ब्रजभाषा और खड़ी बोली का प्रयोग भी मिलता है ।

दादूदयाल (1544-1603)

सिद्धांतत: दादू कबीरमार्गी थे, लेकिन उनका एक स्वतंत्र पंथ भी था जो दादूपंथ के नाम से विख्यात है । दादूपंथी इनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान में मानते हैं । इनकी मृत्यु राजस्थान प्रांत के नराणा गाँव में हुई । दादू द्वारा प्रवर्तित 'दादूपंथ' 'परम ब्रह्म संप्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है । इन्होंने सगुण और निर्गुण की बौद्धिक मीमांसा में न पड़कर निर्गुण भक्त होने पर भी ईश्वर के सगुण रूप को मान्यता दी है । इनकी कविता प्रेमभाव को अभिव्यक्त करती है । यह प्रेम निर्गुण निराकार ईश्वर के प्रति है । दादू की रचनाओं का संग्रह इनके दो शिष्यों संतदास और जगन्नाथ दास ने 'हरडेवाणी' नाम से किया था ।

संत सुंदरदास (1596-1689)

संत सुंदरदास दादूदयाल के शिष्यों में से एक थे । इनका जन्म जयपुर के निकट बौसा नामक स्थान में हुआ था और मृत्यु सांगानेर में हुई । ये संत कवियों में सर्वाधिक शास्त्रज्ञ एवं सुशिक्षित थे । इन्हें देशाटन बहुत प्रिय था । भ्रमण के समय ये दादू के सिद्धांतों का प्रचार करते तथा काव्य रचना करते । इनके द्वारा रचित बयालीस ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'सुंदर विलास' है । समाज की रीति, नीति तथा भक्ति पर इन्होंने विनोदपूर्ण उक्तियाँ कहीं हैं । ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्य निर्गुण संतों में रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जयनाथ, सिंगा जी, बाबा लाल, बाबरी साहिबा, सहजोबाई, दयाबाई, बेनी, पीपा, कमाल आदि उल्लेखनीय हैं ।

निर्गुण प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा

लोकप्रचलित प्रेमकथाओं को लेकर छंदोबद्ध काव्य लिखने की परिपाटी प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य से ही हिंदी में प्रवाहित हुई । प्राय: ये कथाएँ परंपरागत रूप में प्राप्त होती थीं । इनमें जनश्रुति और इतिहास दोनों का लोकपोषित रूप होता था । कुछ कथाएँ काल्पनिक भी होती थीं, किंतु उनमें भी प्राणतत्त्व लोकमान्यताओं और लोकविश्वासों से बना होता था । हिंदी के सूफी कवियों ने इसी परंपरागत कथाकाव्य के प्रवाह को अपनाया और अपने काव्य रचे । हिंदी के सूफी कवि प्राय: भावुक, उदारमना भारतीय मुसलमान थे जिन्होंने हिंदुओं के घर-घर में परंपरा से प्रचलित प्रेम कहानियों को उदार मानवतावादी दृष्टि से अपनाकर ऐसे काव्य रचे जिनसे धर्म-संप्रदाय, जाति-लिंग आदि के विभेद पीछे छूट गए और संवेदना के धरातल पर प्रेम के दिव्य स्वरूप की प्रतिष्ठा हो गई । इन कवियों का उद्देश्य मानव हृदय को झंकृत करना था जो बुनियादी रूप से एक और अखंड है । हिंदी के कुछ प्रमुख सूफी कवि हैं :

मुल्ला दाउद

मुल्ला दाउद ने अपने प्रमुख काव्य 'चंदायन' की रचना चौदहवीं शती के अंतिम वर्षों में की थी । चंदायन पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना तथा उसकी प्रेयसी चंदा की प्रेमकथा पर आधारित है । परिष्कृत अवधी में लिखा गया यह काव्य इस तथ्य को सूचित करता है कि 14वीं शती तक अवधी काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी ।

कुतुबन

कुतुबन का काव्य 'मृगावती' चौपाई-दोहे की कड़बक शैली में रचा गया काव्य है । इसकी रचना 16वीं शती के आरंभ में हुई थी । इसमें चंद्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारी की कन्या मृगावती की जन्मांतरव्यापी प्रेमकथा वर्णित है ।

मंझन

16वीं शती में मंझन ने अपने काव्य 'मधुमालती' की रचना की । मधुमालती में कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र राजकुमार मनोहर का महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती के साथ प्रेम की कथा वर्णित है । प्रेम की विरह व्यथा के साथ इस काव्य में आध्यात्मिक तथ्यों का निरूपण प्रभावशाली रूप में हुआ है ।

मलिक मुहम्मद जायसी (1495-1548)

जायसी हिंदी की सूफी काव्य परंपरा के प्रतिनिधि और प्रधान कवि माने जाते हैं । इनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं किंतु उनमें 'पदमावत' मुख्य है । 'पदमावत' इनके अक्षय यश का आधार है । 16वीं शती में लिखे गए इस काव्य में चित्तौड़ के राजा रतनसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पदमावती की प्रेमकथा वर्णित है । सूफी काव्य परंपरा की इस प्रौढ़ कृति में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय है । सूफी अभिप्रायों का इस काव्य में ऐसा सहज विन्यास हुआ है कि प्रेमकथा और काव्य का प्रवाह तथा स्वाभाविकता बाधित नहीं होती । पदमावत काव्य और इसकी कथा का अंत त्रासद है किंतु त्रासदी में उत्सर्गमय प्रेम का अमर संदेश छिपा हुआ है ।

हिंदी के इन प्रमुख सूफी कवियों के अतिरिक्त इस काव्यधारा में 'चित्रावली' के कवि उसमान, 'ज्ञानदीप' के कवि शेख नबी, 'हंस जवाहिर' के कवि कासिमशाह, 'इंद्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी' के कवि नूर मुहम्मद आदि अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाकार हो चुके हैं ।

निर्गुण काव्य की सामान्य विशेषताएँ

निर्गुण काव्य की ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा दोनों का आधार निर्गुण मत है । इसमें मानवीय भावनाओं का आलंबन परम सत्ता है, लेकिन यह परम सत्ता निराकार और गुणातीत है; यह लीलावाद और अवतारवाद के घेरे से भी मुक्त है । ज्ञानमार्गी कबीर के यहाँ ज्ञान एवं अंतस्साधना पर जोर है लेकिन प्रेम की उत्कटता कम तीव्र नहीं है । उनके काव्य में निर्गुण मतवाद का विश्वबोध स्पष्ट है । सृष्टि की उत्पत्ति, नाश, जन्म, मृत्यु, नाड़ीचक्र, कुंडलिनी आदि संबंधी अनेक बातें उन्होंने की हैं । कबीर ज्ञान की आँधी की शक्ति से सुपरिचित हैं । इस धारा से संबंधित अधिकांश कवि तथाकथित निम्न जातियों से हैं । वर्णव्यवस्था की पीड़ा उनके लिए स्वानुभूत है । अतः उनके काव्य में वर्णव्यवस्था पर तीव्र प्रहार दिखाई पड़ता है । इन लोगों ने नाथपंथी योगियों की अंतस्साधना के साथ उनके दुरूह प्रतीक तथा उलटबाँसी का प्रभाव भी ग्रहण किया है । ज्ञानाश्रयी धारा के कवियों ने कोई प्रबंध काव्य नहीं लिखा है । उन्होंने फुटकर दोहे, चौपाई, गेयपद लिखते हुए कुछ लोक प्रचलित छंदों में अपनी बात कही है ।

प्रेमाश्रयी धारा के कवियों ने इस्लाम के सूफी मत का प्रभाव ग्रहण किया है और अधिकतर प्रबंध काव्य ही रचे हैं । इस धारा के कवियों ने प्रेम को प्रधानता दी है । प्रेम में उत्कट विरह व्यंजना और प्रतीकात्मकता इस धारा की अन्यतम विशेषता है । सूफी कवियों को 'प्रेम की पीर' या प्रेमाश्रयी धारा का कवि कहे जाने के पीछे यही कारण है । इस धारा के कवियों की भाषा अवधी है । ये काव्य चौपाई-दोहे की कड़वक शैली में हैं ।

सगुण रामभक्ति शाखा

सगुण रामभक्ति शाखा के कवियों का संबंध रामानंद से है । इन्हें रामकाव्य परंपरा की भावधारा और चिंतन का मेरुदंड कहा जाता है । भक्ति के लिए रामानंद ने वर्णाश्रम व्यवस्था को व्यर्थ बताया । उन्होंने भक्ति को सभी प्रकार की संकीर्णता से दूर करके इतना व्यापक बना दिया कि उसमें गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, निर्गुण-सगुण, सवर्ण-अवर्ण, हिंदू-मुसलमान सभी आ गए । रामानंद ने शास्त्र परंपरा और संस्कृत भाषा के स्थान पर लोक जागरण और लोक कल्याण के लिए लोकभाषा में काव्य-सृजन को महत्त्व दिया । इस परंपरा के कवियों में तुलसीदास का नाम सबसे ऊपर है ।

गोस्वामी तुलसीदास (1543-1623)

गोस्वामी तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था । इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ । कभी अत्यधिक आसक्ति से खीझकर इनकी पत्नी ने इनकी मधुर भर्त्सना करते हुए कहा था – 'लाज न आई आपको दौरे आए साथ' । इस भर्त्सना ने इन्हें लौकिक विषयों से विमुख कर प्रभु-प्रेम की ओर उन्मुख कर दिया ।

तुलसीदास द्वारा रचित बारह ग्रंथ प्रामाणिक माने गए हैं । दोहावली, कवित्त रामायण (कवितावली), गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञाप्रश्न, विनयपत्रिका, रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकी मंगल, बरवैरामायण, वैराग्य संदीपनी और श्रीकृष्णगीतावली ।

गोस्वामी जी की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है – भाव-वैविध्य और रूप-वैविध्य रामकथा के विविध प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के आदर्शों को जनता के सामने प्रस्तुत कर विशृंखलित समाज को केंद्रित करने का श्रेय उन्हें प्राप्त है । तुलसीदास की भक्ति भावना में रहस्यमयता नहीं है । वह सीधी, सरल एवं सहजसाध्य है । उनके राम सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं और सभी के लिए सुलभ हैं ।

निगम आगम, साहब सुगम राम साँचिली चाह ।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबहि जग माह ।।

गोस्वामी जी की शैली में भी वैविध्य है, जो भाव-वैविध्य के अनुरूप है । उन्होंने अपनी रचनाओं में वीरगाथा की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीति पद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, नीतिकाव्यों की सूक्ति पद्धति, प्रेमाख्यानों की दोहा-चौपाई की प्रबंध पद्धति आदि सभी काव्य शैलियों का सफल प्रयोग किया है । प्रबंध सौष्ठव, चरित्र चित्रण, प्रकृति वर्णन, अलंकार विधान, भाषा और छंदप्रयोग की दृष्टि से गोस्वामी जी अद्वितीय हैं । उक्ति वैचित्र्य उनकी प्रमुख विशेषता है ।

तुलसीदास ने ब्रजभाषा और अवधी दोनों भाषओं में लिखा है । उनकी अवधी संस्कृतनिष्ठ है । अवधी शब्दों में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग उन्होंने इस ढंग से किया है कि पूरी पदावली अवधी के ध्वनि प्रवाह में ढल जाती है । इसका प्रमुख कारण यह है कि तुलसीदास वर्णानुप्रास के अद्भुत कवि हैं और उनकी नाद योजना उनकी काव्य कला की महत्त्वपूर्ण विशेषता है ।

नाभादास

नाभादास भी रामानंद की शिष्य परंपरा से आते हैं । इनकी उपस्थिति सन् 1575 के आसपास मानी जाती है । ये तुलसीदास के समकालीन रामभक्त कवियों में अतिविशिष्ट हैं । इन्होंने भक्तमाल परंपरा का सूत्रपात किया और अभी तक उपलब्ध भक्तमालों में सर्वश्रेष्ठ 'भक्तमाल' हिंदी को दिया । नाभादास ने इस ग्रंथ की रचना 1585 ई० के आसपास की । प्रियादास के द्वारा 1712 ई० में इसकी टीका लिखी गई । इसमें 200 भक्तों के चरित 316 छप्पयों में वर्णित हैं । 'भक्तमाल' के अतिरिक्त इन्होंने 'अष्टयाम' की भी रचना की ।

नाभादास संस्कृत काव्यशास्त्र और छंद शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे । इन्होंने अपनी समास शैली का परिचय देते हुए 'भक्तमाल' में जिन भक्तों का परिचय लिखा है; उनकी रचना शैली, काव्य कला, उपासना पद्धति, विशिष्टता आदि को एक ही छप्पय में सूत्र शैली में समाविष्ट कर दिया है । यह ग्रंथ ब्रजभाषा में है ।

तुलसीदास और नाभादास के अतिरिक्त रामाभक्ति शाखा के अन्य उल्लेखनीय कवियों में प्राणचंद चौहान एवं हृदय राम प्रमुख हैं । 'रामचंद्रिका' के कारण केशवदास को भी कुछ लोगों ने रामभक्ति शाखा का कवि माना है । हालाँकि केशवदास का महत्त्व उनके आचार्यत्व में ही है । अत: उन्हें रीतिकाल के कवि के रूप में ही याद किया जाना चाहिए ।

सगुण कृष्णभक्ति शाखा

पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य के दार्शनिक चिंतन से कृष्ण भक्ति धारा को एक आधार मिला । देशाटन, जन संपर्क और शास्त्रार्थ के द्वारा उन्होंने इस भक्ति का प्रचार किया । उनके अनुसार यह सारी सृष्टि भगवत लीला के लिए आत्मकृति है । अर्थात् भगवान की लीला के लिए उनके द्वारा ही बनाई गई सृष्टि है । जीव ब्रह्म का अंश है और वह तीन प्रकार का होता है - 1. प्रवाह जीव 2. मर्यादा जीव और 3. पुष्टि जीव । प्रवाह जीव सांसारिक प्रवाह में पड़े रहते हैं । मर्यादा जीव विधि-निषेध का पालन करते हैं और पुष्टि जीव भगवान का अनुग्रह प्राप्त करते हैं । महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भक्ति के लिए प्रेम तत्त्व को महत्त्व दिया है इसलिए पुष्टिमार्गीय भक्ति को 'प्रेमा भक्ति' भी कहते हैं । कृष्णभक्ति शाखा में सर्वप्रथम 'अष्टछाप' के कवियों की गणना होती है । अष्टछाप में आठ कवि हैं । इनमें चार क्रमश: वल्लभाचार्य के शिष्य हैं और बाकी चार उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ के । ये निम्नांकित हैं - कुंभनदास, परमानंददास, सूरदास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास ।

सूरदास (1478-1583)

सूरदास का जन्म 15वीं शती के अंतिम वर्षों में हुआ था । ब्रज के गऊघाट में श्री वल्लभाचार्य से उनका साक्षात्कार हुआ था । वल्लभाचार्य से उपदेश पाकर वे श्रीकृष्ण के लीला विषयक पदों की रचना करने लगे । पहले सूर के भक्ति विषयक पद विनय और दैन्य भाव के होते थे । श्री वल्लभाचार्य के संपर्क में आने पर उनके पद वात्सल्य और माधुर्य भाव के होने लगे । सूरदास द्वारा रचित पुस्तकों में 'सूरसागर', 'साहित्यलहरी' आदि प्रमुख हैं । 'सूरसागर' उनकी श्रेष्ठ कृति है । सूरसागर की रचना 'भागवत' की पद्धति पर द्वादश स्कंधों में हुई है । 'साहित्यलहरी' सूरदास के सुप्रसिद्ध दृष्टकूट पदों का संग्रह है । इसमें अर्थगोपन की शैली में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है । अलंकार निरूपण की दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है ।

ब्रजभाषा में गीतिकाव्य की परंपरा को सूरदास ने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया । कविता, संगीत, नाट्य, चित्र, मूर्ति आदि कलाओं का एकत्र समाहार उनके काव्य में है । ब्रजभाषा को ग्रामीण जनपद से उठाकर उन्होंने नगर और ग्राम के साँधिस्थल पर ला बिठाया । उनकी भाषा में तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग है, फिर भी वह सुगम है । संस्कृत और फारसी-अरबी शब्दों के साथ ब्रजभाषा की माधुरी सूर की भाषा शैली में सजीव विद्यमान है । अवधी और पूर्वी हिंदी के शब्द भी उनकी भाषा में हैं ।

कृष्ण भक्ति सूर-काव्य का मुख्य विषय है । 'भागवत' के आधार पर उन्होंने राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन किया है । सूरसागर में उन्होंने श्रीकृष्ण के शैशव और कैशोर वय की विविध लीलाओं को स्थान दिया है, इनमें उनकी अंतर्रात्मा गहरी अनुभूति तक उतर सकी है । बालक की विविध

चेष्टाओं और विनोदों के क्रीड़ास्थल, मातृहृदय की अभिलाषाओं, उत्कंठाओं और भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिंदी के श्रेष्ठतम कवि हैं । भक्ति के साथ शृंगार को जोड़कर उसके संयोग और वियोग पक्ष का मार्मिक चित्रण सूर के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है । वियोग के संदर्भ में भ्रमरगीत प्रसंग सूर की काव्य कला का उत्कृष्ट निदर्शन है ।

नंददास (1533-1586)

नंददास का जन्म उत्तर प्रदेश के सोरों (सूकर क्षेत्र) के रामपुर गाँव में हुआ था । ये सूरदास के समकालीन और अष्टछाप के कवियों में से थे । काव्य-सौष्ठव और भाषा की प्रांजलता की दृष्टि से इनका स्थान सूरदास के बाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है - 'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया' । इनकी कृतियों में - 'रासपंचाध्यायी', 'सिद्धांत पंचाध्यायी', 'दशम स्कंध भाषा' आदि प्रमुख हैं । रासपंचाध्यायी इनकी श्रेष्ठ कृति मानी जाती है । यह काव्य लौकिक गोपी प्रेम और आध्यात्मिक कृष्ण भक्ति का समन्वित विधान करता है । नंददास की रचनाएँ परिमार्जित ब्रजभाषा में हैं । संगीत प्रवीण होने के कारण शब्दों के चयन में लय, स्वर आदि का ध्यान रखने से उनके काव्य में श्रुतिमधुर, प्रांजलता, सांगीतिकता और प्रवाह की सृष्टि हुई है ।

कृष्णदास (1496-1578)

कृष्णदास का जन्म अहमदाबाद के चिलोतरा गाँव में हुआ था । कृष्णदास काव्य और संगीत के मर्मज्ञ थे । उन्होंने बाललीला, राधाकृष्ण प्रेम-प्रसंग, रूप-सौंदर्य आदि का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है । इनका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, कुछ फुटकल पद ही उपलब्ध हो पाते हैं, जो 100 से कुछ अधिक हैं । कृष्णदास के पदों की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है ।

उक्त कवियों के अतिरिक्त अष्टछाप के कृष्णभक्त कवियों में कुंभनदास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास भी अपनी कवि प्रतिभा और कलात्मक, सरस काव्य रचना के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं ।

अन्य कवि

मीराबाई (1504–1558-63 के बीच)

मीरा का जन्म 'मेड़ता' के निकट 'कुड़की' गाँव में राठौर वंश की मेंड़तिया शाखा में हुआ था । इस शाखा के मूल पुरुष राव दूदा थे । मीरा उन्हीं के पुत्र रत्नसिंह के घर पैदा हुईं । मीरा जब दो वर्ष की थीं, तभी उनकी माता का देहांत हो गया । उनके पिता सदैव युद्धरत रहने के कारण पुत्री के पालन-पोषण में असमर्थ थे । अतः राव दूदा मीरा को अपने पास मेड़ता ले आए । राव दूदा के सान्निध्य में रहकर मीरा पलने लगीं और उनसे वैष्णव भक्ति का प्रभाव भी ग्रहण करने लगीं । मीरा के हृदय में गिरिधर गोपाल के प्रति अनन्य आस्था का जन्म उन्हीं दिनों हुआ ।

सन् 1516 ई० में मीराबाई का विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ, किंतु सात वर्ष पश्चात ही भोजराज का देहांत हो गया । मीरा का अंतर्मन व्यथा से भर उठा । बचपन में मिले

संस्कार रूप में कृष्णानुराग के अतिरिक्त अब उनका कोई संबल न था । वे स्वयं को अजर-अमर स्वामी कृष्ण की चिरसुहागिनी मानने लगीं ।

जग सुहाग मिथ्या रे सजनी हांवा हौं मिट जासी
वरन करयां हरि अविनाशी म्हांने काल-व्याल न खासी ।

मीरा तथाकथित लौकिक बंधनों से मुक्त हो गईं और लोक-लाज छोड़कर निश्चिंत भाव से साधुसंगति एवं भक्ति भावना में लीन हो गईं । राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात उनके उत्तराधिकारी विक्रमसिंह के लिए मीरा का यह आचरण असह्य था । उसने मीरा को अनेक यातनाएँ दीं, पर मीरा अपने मार्ग पर अडिग रहीं । वे पुष्कर यात्रा करती हुई वृंदावन गईं, जहाँ उनकी भक्तिधारा मधुरोपासना के रस में निमज्जित हुई । कुछ समय बाद वे वृंदावन छोड़कर द्वारका चली गईं और वहीं रणछोड़ जी के मंदिर में भगवान की मूर्ति के सम्मुख एकाग्र भाव से भजन-कीर्तन करते हुए शेष जीवन व्यतीत किया । मीराबाई के पद 'मीराबाई की पदावली' नाम से प्रकाशित हैं ।

मीराबाई का काव्य उनके हृदय से निकले सहज प्रेमोच्छ्वास का साकार रूप है । व्याकुलता एवं वेदना उनकी कविता में निश्छल अभिव्यक्ति पाती है । उनकी वृत्ति एकांततः प्रेम-माधुरी में रमी है । अपने आराध्य 'गिरधर गोपाल' की विलक्षण रूप छटा के प्रति उनकी अनन्य आसक्ति अनेक भाव धाराओं में फूट पड़ी है । मीरा के काव्य का प्रमुख रस वियोग शृंगार है । उनकी विरह भावना का कोई ओर-छोर नहीं है । प्रेमोन्मादिनी मीरा का एक-एक पद उनके हृदय की भावुकता का परिचायक है ।

मीरा की कविताओं की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है । उनके पदों में गुजराती भाषा का भी विशेष पुट है । खड़ी बोली और पंजाबी का भी उस पर प्रभाव है । उनके पद विभिन्न राग-रागिनियों में आबद्ध हैं । संगीत और छंद विधान की दृष्टि से उनका काव्य अत्यंत उच्च कोटि का है ।

रसखान (1548-1628)

ये विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे । ये जन्म से मुसलमान थे । कृष्णभक्त कवियों में इनका स्थान अप्रतिम है । इनकी भाषा बहुत चलती, सरल और शब्दाडंबरमुक्त है । इनकी दो छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हैं - 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' । प्रेमवाटिका दोहे में है तथा सुजान रसखान कवित्त-सवैयों में । रसखान ने अन्य कृष्णभक्तों की तरह 'गीतकाव्य' का सहारा न लेकर कवित्त-सवैयों में अपने उत्कट कृष्ण प्रेम की व्यंजना की है । सच्चे प्रेम से परिपूर्ण इनके सवैये अत्यंत प्रसिद्ध हैं -

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं संग गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ।।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर धारन ।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब के डारन ।।

कृष्णोपासक भक्त कवियों की परंपरा यहीं समाप्त नहीं होती । स्वामी हरिदास, हितहरिवंश, हरिरामव्यास सुखदास, लालचदास, नरोत्तम दास, अलबेली अली, भगवत रसिक आदि अनेक पहुँचे हुए भक्त कवि हो गए हैं, जिनकी रचनाएँ उच्च कोटि की हैं ।

भक्ति काल में भक्ति की प्रमुख धाराओं और प्रवाहों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कवि थे जो राजदरबारों से जुड़े हुए थे । नरहरि और गंग ऐसे ही कवियों में थे । रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना) अकबर दरबार के नवरत्नों में से एक थे । वे दरबार में रहकर भी दरबारी काव्य परंपरा से अलग लोकजागरण की चेतना के प्रमुख कवि हैं ।

जिस प्रकार राष्ट्रभाषा हिंदी की क्षेत्रीय भाषाओं में ब्रजभाषा, अवधी और राजस्थानी की रचनाओं से हिंदी साहित्य का गौरव बढ़ा है, उसी प्रकार मैथिली, भोजपुरी की रचनाओं ने भी उसका मान बढ़ाया है । भाषा की सफाई और भावों की मिठास के लिए बिहार के कंसनारायण, गजसिंह, गोविंद ठाकुर, मधुसूदन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इनकी भाषा प्रांजल और भाव सौष्ठव की दृष्टि से सराहनीय है । सोलहवीं शती में सविता भोजपुरी के प्रथम कवि के रूप में उपस्थित हैं, जबकि सोन और हेम ने ब्रजभाषा में रचनाएँ की हैं । सोन की कुछ रचनाएँ अवधी भाषा में भी हैं । इन कवियों की रचनाओं में अधिकतर शृंगार विषयक और भक्तिमूलक प्रसंग हैं । भक्तिमूलक रचनाओं में भगवान कृष्ण और शिव के अतिरिक्त भगवती के प्रति भी श्रद्धा निवेदन में है ।

सत्रहवीं शती के बिहारी कवियों की रचनाओं में शृंगार रस की रचनाएँ कम और देवस्तुति संबंधी भक्ति की और आध्यात्मिक विचारों की उपदेशात्मक कविताएँ अधिक हैं । भक्ति की रचनाओं में भगवान कृष्ण, शिव और दुर्गा के अतिरिक्त भगवान के निर्गुण स्वरूप के प्रति भी भक्ति भाव निवेदित हैं । इस काल में वीर रस के एकमात्र बिहारी कवि 'कृष्ण' हैं । इनकी भाषा में महाकवि भूषण की शैली की झलक मिलती है । भाषा और भाव की दृष्टि से इस शती के बिहारी कवियों में दलेलसिंह, धरणीदास, प्रबलशाह, मंगनीराम, महिनाथ ठाकुर, लोचन, दरिया साहब, हलधरदास और धरणीधर के नाम उल्लेखनीय हैं । कृष्ण और लोचन कवि की रचनाएँ ब्रजभाषा में भी हैं । ब्रजभाषा के अतिरिक्त भोजपुरी में रचना करनेवालों में धरणीदास और रामचरणदास निर्गुण संत मत के कवि हैं । रामचरण दास प्रेममार्गी है । दरिया साहब और धरणीदास से ही बिहार में निर्गुणवादी संत संप्रदाय का प्रवर्तन होता है । दोनों ने अपने-अपने नाम से नए पंथों का प्रवर्तन किया । इस युग में गोविंद, देवानंद और रामदास नाटककार हैं; भगवान मिश्र एक गद्यकार हैं तथा प्रद्युम्न दास अनुवादक हैं ।

❑❑❑